

# अपनी इस्लाह आप

नईम सिद्दीकी

## विषय-सूची

१. प्रस्तावना	५
२. अपना सुधार आप	७
३. बाहर से मदद	१०
४. नफ़स की इस्लाह की शुरूआत	१३
५. अपने मरतबे व मुक़ाम का सही शज़र	२०
६. उद्देश्य	२३
७. ज़ाबता व मेयार का इल्म	२७
८. एक संकल्प, एक फैसला	३०
९. अपने नफ़स की पहचान	३४

## प्रस्तावना

इन्सान के किरदार की तामीर दुनिया का सबसे नाजूक और बड़ा ही मुश्किल काम है, लेकिन इसी के साथ ज़रूरी और बड़ा अहम भी। इन्सानियत जब तक अखलाक के ऊंचे आदर्शों व उसूलों पर कायम न हो जाए सभ्यता को अच्छी लाइनों पर विकसित करना मुम्किन नहीं है। आज हम फसाद व बिगाड़ के जिस सर्वव्यापी दौर से दो-चार हैं और जिसके सुख व चैन तबाह करने वाले फितने हमारे घरों के सीमित माहौल से लेकर संयुक्त राष्ट्र की अन्तर्राष्ट्रीय संस्था तक हर जगह चिगारियां छोड़ रहे हैं, उनसे छुटकारे की कोई राह इसके अलावा नहीं है कि इन्सान की सीरत सोच-समझ, धारणाओं व आस्थाओं से लेकर उसकी सियासी, सामाजिक और आर्थिक सरगर्मियों तक—में मौलिक परिवर्तन, इंकिलाबी तबदीली पैदा हो। और आदम की औलाद भौतिकतावादी चरित्र से निजात पाकर ईश्वरवादी चरित्र को अपनाएं और एहसास रखने वाले लोग एक-एक करके इस अंधेरे में सितारों की तरह उभरें।

एक कौम की हैसियत में, हम खुद एक नैतिक क्रान्ति के बड़े ज़रूरतमंद हैं। हमारे समाज में बेशुमार अख्लाकी रोग बहुत बड़े पैमाने पर फैले हुए हैं। हमारे यहां व्यक्तिगत और खानदानी, सामाजिक व सामूहिक, दफ्तरी और कारोबारी तथा राजनैतिक और राष्ट्रीय जीवन के सभी मैदानों में अख्लाकी बिगाड़ का ज़हर फैला हुआ है। इस ज़हर के असर ढके-छुपे नहीं, बल्कि अच्छी तरह प्रकट व स्पष्ट हैं। व्यक्ति अच्छे उसूलों, अच्छी रिवायतों और उच्च नैतिक मूल्यों से खाली होते जा रहे हैं। यह नैतिक गिरावट हर तरह की तरक्की में रुकावट बन रही है। और इसी वजह से हमारी सभी ताकतें और क्षमताएं नष्ट होती जा रही हैं। जीवन का एक नया दौर शुरू करने के लिए हमारा पहला कदम यही हो सकता है कि हमारे अन्दर एक अख्लाकी इंकिलाब या नैतिक क्रान्ति आए।

इन्सानों में नैतिक क्रान्ति केवल बाहरी तदबीर व कोशिश से पैदा नहीं की जा सकती। केवल क़ानून और नियम, बोर्ड और कमीशन, दफ़्तर और संस्थाएं, डराने-धमकाने की तदबीरें, अदालतें और जेल, जुरमाने और सज़ाएं आदमी को अच्छा नहीं बना सकते। नैतिक-ईक़िलाब हमेशा आदमी के अन्दर शुरू होता है। जब तक कोई नई विचार-धारा उसके दिल-दिमाग में घर न कर ले, कोई मक़सद उसको अन्दर से प्रेरणा न दे, जब तक खुद उसे यह एहसास न हो जाए कि मौजूदा हालत एक ग़लत हालत है, और जब तक वह उस ग़लत हालत से निकल कर अच्छी हालत तक पहुंचने के लिए स्वेच्छा से काम न लेने लगे, उस वक़्त तक कोई बड़ा नैतिक परिवर्तन नहीं आ सकता। मानव अन्तःकरण में जब तक अपना ही दीप रोशन नहीं हो जाता, बाहर के सूरज और चाँद उसको अन्धेरों से छुटकारा नहीं दिला सकते।

इस्लाम अपनी व्यापक सामाजिक क्रान्ति की शुरूआत इसी प्रकार के नैतिक-ईक़िलाब से करता है। वह इन्सान के चरित्र में बुनियादी तब्दीली पैदा करने की दावत देता है। इसी मक़सद से वह एक-एक व्यक्ति के अन्दर की कुव्वतों और क्षमताओं को जगाता है। वह व्यक्ति को ईमान जैसी ताक़त से माला-माल करता है। वह ईश-प्रेम और ईश-भय जैसा निगहबान उसके अन्दर बिठाता है। वह अन्तरात्मा जैसा गाइड और सलाहकार उसके साथ लगाता है और अल्लाह के भेजे गए ज्ञान की मशाल उसके हाथ में थमाता है, जो सही और ग़लत का अन्तर उस पर स्पष्ट करती है। वह उसके अन्दर एक ऐसा साहस जगाता है जो उसे नेकी और भलाई के मार्ग पर निरन्तर पग-पग आगे बढ़ाता रहता है। आज हमें और हमारी पूरी दुनिया को इस्लाम के इच्छित अख़लाकी ईक़िलाब की ज़रूरत है। इसी एहसास से यह पुस्तिका लिखी गई है।

## अपना सुधार आप

इस्लाम सीरत की तामीर (चरित्र-निर्माण) और किरदार (आचरण) के सुधार की अहम जिम्मेदारी हर व्यक्ति के अपने ऊपर डालता है। यह बात कहते हुए मैं सामाजिक जीवन की अहमियत को कम नहीं करना चाहता। मैं मानता हूँ कि व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व को बनाने-संवारने के लिए सही समाजी निज़ाम और पाकीज़ा व भले माहौल की इतिहाई ज़रूरत है। और नासाज़गार सामूहिक माहौल में अकेले किसी आदमी की अपने व्यक्तित्व के सुधार की तथा तामीर की कोशिश करना, एक ऐसा मुश्किल इम्तिहान है, जिसका विचार ही दिल को दहला देता है। लेकिन इसके बावजूद यह हकीकत अपनी जगह बिल्कुल सही है कि अल्लाह की ओर से और उसके प्रति हर व्यक्ति अपना जिम्मेदार आप है। हर व्यक्ति को अपने बारे में खुद जवाब देना है। हर व्यक्ति से उसकी ताकत और क्षमताओं के बारे में, उसके चरित्र व आचरण (सीरत व किरदार) के बारे में अलग-अलग सवाल-जवाब होना है कि उसने उसकी हिफाज़त में किस दरजे की चौकसी दिखाई? उसके इस्तेमाल में कहां तक एहतियात और समझ-बूझ से काम लिया और उसकी बढ़ोतरी के लिए कौन-कौन से मुम्किन उपाय किये? वहां तो हर व्यक्ति को अल्लाह की अदालत में उस समय तक अपने पैरों पर खड़ा रहना होगा, जब तक वह यह हिसाब न दे ले कि उसने अपनी उम्र किन मकसदों के लिए और किस-किस काम के लिए खपाई? उसने अपनी जवानी की ताकत का खज़ाना किस मुहिम में खर्च किया? उसने किस तरह कमाया और अपनी कमाई को किन रास्तों में खर्च किया? और सच्चाई की जितनी कुछ जानकारी तथा अपनी जिम्मेदारियों और दायित्वों (फ़रायज़) तथा

हलाल व हराम का जितना कुछ इल्म उसे हासिल हो सका, उसके अनुसार अमल करने में कहां तक सरगरमी दिखाई? अपनी ज़िम्मेदारियों के इस बोझ में वह किसी दूसरे को अपना साथी न बना सकेगा। दोस्त व रिश्तेदार उसके साथ खड़े होकर उस घड़ी उसकी मुसीबत में कोई मदद न करेंगे।

“कोई बोझ उठाने वाला किसी दूसरे का बोझ नहीं उठाएगा”  
(कुरआन ३९:७)

इस बात की गुंजाइश है, और ज़रूर है कि ख़िलाफ़ माहौल के सबब एक व्यक्ति को आख़िरत की अदालत में हिसाब-किताब के वक़्त कुछ छूट मिले और ज़बरदस्ती की जिन रुकावटों तथा अपने बस से बाहर की जिन मुश्किलों से घिर कर वह बेबस हो जाता रहा हो, उनका उसे बोनस दिया जाए, लेकिन मुख़ालिफ़ माहौल से जूझने की अपनी ज़िम्मेदारी से वह किसी भी हाल में बरी नहीं हो सकता। आख़िर एक पवित्र सामूहिक-व्यवस्था, एक साफ़-सुथरा समाज और एक साज़गार माहौल मुहैया करना भी तो खुद व्यक्ति की ही अपनी ज़िम्मेदारी है, और इस मक़सद को पाने के लिए कोशिश की शुरुआत एक व्यक्ति की ही दावत से होती है। अब अगर व्यक्ति पर बुनियादी और आरम्भिक ज़िम्मेदारी न रखी गई हो तो एक नासाज़गार माहौल लोगों के लिए एक हमेशा का बहाना व कारण बन जाएगा। यह चक्कर फिर कहीं से टूट ही नहीं सकता।

यही वजह है कि अल्लाह के पैग़म्बरों (अलैहिस्सलाम) की ओर से की जाने वाली इस्लाह की दावत में सब से पहले और बुनियादी तौर से व्यक्ति को ही सम्बोधित किया जाता है। उसका पहला पैग़ाम 'कू अनफु-सकुम' (बचाओ अपने आपको) का पैग़ाम है। उसकी तरबियत के लिए उसकी सारी व्यवस्था का मक़सद यह है कि हम अपने लिए, अपने ही अन्दर एक मुर्बबी (सुधारने वाला)

और मुजबकी (संवारने व साफ-सुथरा करने वाला) उपलब्ध करें। बाहर से मिलने वाली मदद के भी हम मुहताज हैं और इल्म हासिल करने तथा अपने आमाल को सुधारने के काम में बाहरी मदद हमारे लिए बड़ी ज़रूरी भी है, और बहुत मुफ़ीद भी। मगर अपने व्यक्तित्व के असल निर्माता हम खुद हैं, और हमें अपनी इस्लाह के लिए सब से बढ़ कर खुद अपनी मदद की ज़रूरत है।

## बाहर से मदद

मानव-चरित्र व उसके व्यक्तित्व के सुधार के लिए बाहर (खारिज) से जो तत्व कार्य करते हैं, उनमें से एक कानून की ताकत है। मगर कानून की ताकत केवल उन मामलों में ही पकड़ कर सकती है जो किसी अन्य व्यक्ति या समाज के लिए नुकसान पहुंचाने वाले हों और उनके लिए काफी गवाही मौजूद हो और उन गवाहियों की मदद से घटनाओं का सही-सही नक्शा सामने आ जाए। फिर कानून की ताकत अपने फैसलों में गलती कर सकती है, गवाही काफी न होने पर बेबस हो सकती है, और बहुत से व्यक्तिगत मामलों में बे-ताल्लुक भी रह सकती है। वह केवल बुराई की रोक-थाम के लिए नकारात्मक तदबीरें तो कर सकती है, लेकिन सकारात्मक रूप में चरित्र-निर्माण का कर्तव्य नहीं निभा सकती। फिर हर अमल के पीछे भलाई और बुराई की जंग का जो हंगामा जारी है, उस तक उसकी पहुंच नहीं।

दूसरी ताकत जनमत की ताकत है, जो हमें बुराई से रोकने और भलाई की तरफ बढ़ने में मदद दे सकती है। समाज में अच्छी तरह मजबूती से स्थापित परिपार्टियां, तालीम द्वारा दिल-दिमाग की तरबियत, खानदान और मिलने-जुलने वालों में स्थापित नैतिक मूल्यों और किसी उसूली जमाअत का तरबियत व एहतसाब का निजाम, यह सारे कारक हमारे व्यक्तित्व के निर्माण में हमें बड़ी मदद देते हैं। लेकिन इन तत्वों की पहुंच भी बस हमारी बोल-चाल तथा आचरण तक ही है। और ये हमारे अन्तःकरण की उस दुनिया में नहीं उतर सकते जहां वास्तव में हमारे किरदार का सारा निजाम तैयार होता है, ख्याल की नदी का वह पहला झरना जो हमारे केन्द्र 'अन्दर' से फूटता है और जिससे अमल व किरदार की सारी लहरें उठती हैं, उस पर जनमत की भी कोई पकड़ नहीं।



समाज की ओर से हमारी अख़लाकी तामीर के लिए एक तालीम व तरबियत का एक तफ़सीली निज़ाम भी काम करता है, जिसका पहला मरहला ख़ानदान है, फिर इबादतगाहें और स्कूल हैं, फिर समाचार पत्र-पत्रिकाएँ, अन्य साहित्य, रेडियो, टी.वी. और सिनेमा आदि जन-संचार व प्रचार के माध्यम हैं। फिर बेशुमार इल्मी, तहकीकी, समाजी व सांस्कृतिक संस्थाएँ भी हैं। जनता की तरबियत का यह विस्तृत निज़ाम हमारे विचारों, व्यवहार तथा आचारण को बनाने बिगाड़ने में बहुत बड़ा हिस्सा लेता है। लेकिन इस विस्तृत निज़ाम में जब बिगाड़ आ जाता है तो उसमें भलाई के साथ बुराई इस प्रकार घुल-मिल जाती है कि यह उलटा मानव-चरित्र को बिगाड़ने लगता है, और उसके बुरे प्रभावों से अपना बचाव करने के लिए आदमी में एक सोचा समझा इरादा मौजूदा होना चाहिए। दूसरे यह तरबियत का निज़ाम अच्छा होकर भी केवल कुछ मालूमात, और परम्पराएँ और भावनाएँ तथा मूल्य ही हमें उपलब्ध करा सकता है। लेकिन अमल (कर्म) की दुनिया में एक सरगर्म इन्सान बनने और एक निश्चित नक़शे पर ढलने के लिए अपने ही इरादे की ज़रूरत होती है।

बाहर से एक मदद हमें मनोवैज्ञानिक विश्लेषण द्वारा भी मिलती है। यह विश्लेषण हमारी मानसिक धरती की खुदाई करके बिगाड़ के किसी ख़ास बीज और फ़ितने की किसी एक जड़ की निशानदेही तो कर सकता है, मगर वह सुधार के लिए हमें मज़बूत ईमानी ज़ब्बे और इक़िलाबी दरजे की संकल्प-शक्ति से माला-माल नहीं कर सकता।

ये सारे तत्व और माध्यम अपनी जगह बहुत मुफ़ीद और ज़रूरी हैं, लेकिन ये हमारी बुनियादी जिम्मेदारी को कम नहीं कर सकते। इन्सान की चेतना जब तक खुद ही जाग्रत होकर व्यक्तित्व

व चरित्र की तामीर और बुराई के हमलों से उसे बचाने का पक्का इरादा न कर ले, कोई कानून, कोई प्रवचन-नसीहत, कोई शिक्षा, कोई मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, कोई शुद्धिकरण का निज़ाम (साधना) और कोई ट्रेनिंग व तरबियत का केन्द्र आदमी को ठीक नहीं कर सकता। अपनी चेतना अगर सोती रहे, और अपनी इच्छा-शक्ति यदि सुन्न हो रही हो तो बाहर की ये सारी तदबीरें धीरे-धीरे बेजान और प्रभावहीन हो जाती हैं। आदमी के अन्दर का सुधारक और निगरां अगर मर गया हो, तो बाहर के सुधारकों व निगरानों की नसीहतें केवल कानों पर बोझ होती हैं, जिनको सुन कर विचार-शीलता पैदा होने के बजाए उलटी ऊंघ व घबराहट पैदा होने लगती है। और बाहर से थोपे गए बेहतरीन आचरण भी बस बेजान दिन-चर्या का रूप ले लेते हैं।

## नफ़स की इस्लाह की शुरुआत

इस्लाम को जिस तरह और जिस हद तक मैंने समझा है, उसके अनुसार सुधार का आरंभ-बिन्दु आदमी के अन्दर जिम्मेदारी का यह एहसास है कि अपने भले और बुरे या अपने बिगाड़ व सुधार का जिम्मेदार मैं खुद हूँ। जिस दिन यह एहसास अंगड़ाई लेता है, उसी दिन सीरत के इंकिलाब का शुभारम्भ होता है। और जब तक यह एहसास सुन्न हुआ रहता है, ईमान व अख़लाक़ की हौसियत से आदमी पस्ती के गढ़े में पड़ा करवटें लेता रहता है, और ज्यादातर यह होता है कि सारी उम्र इसी हालत में बरबाद हो जाती है। और जब आखिरी वक़्त आन पहुँचता है तो आदमी की शरमिन्दा रूह यह फरियाद करती है:

‘हे रब! क्यों न तूने मुझे और ज्यादा समय के लिए छूट दी कि मैं सद्का करता और नेक लोगों में शामिल हो जाता’ (कुरआन)

शैतानी ताकतें जिम्मेदारी के इस एहसास को सुलाए रखने के लिए बड़े जतन करती हैं। वे इन्सान के नफ़स को कई मजेदार नशीले पेय पिलाती रहती हैं और अफीम घोल-घोल कर बड़े सुन्दर प्यालों में पेश करती हैं। जब तक उनका नशीला असर बाकी रहता है, आदमी अपनी ग़लतियों और निकम्मेपन की जिम्मेदारियों को दूसरों के सिर डालता रहता है। सारे कुसूर उसे दोस्तों, साथियों, घर के लोगों, जमाअत के साथियों, सामाजिक माहौल और राज-तन्त्र में ही नज़र आते हैं। वह हमेशा इन्हीं लाइनों पर सोचता है कि अगर फ़लां व्यक्ति या गिरोह ऐसा न करता तो मैं पस्ती में न गिरता, अगर यूँ न हुआ होता तो मैं वह और वह अच्छाई पा लेता, अगर हालात ऐसे और ऐसे न होते तो मुझे यह रवैया अपनाना न पड़ता। हर गुनाहगार, ख़ताकार, मुजरिम के सोचने का ढंग यही हुआ करता है। और क़त्ल, चोरी और बदकारी करने के बाद उनकी जिम्मेदारी

खुद कुबूल करने के बजाए, किसी दूसरे बाहरी तत्व के सिर डालता है।

जिम्मेदारी के एहसास के सुन्न हो जाने की सूरत में दूसरी तरफ आदमी अपनी इस्लाह व तामीर का मुतालबा पूरी तरह दूसरों से करता है। वह देखने में इस बात का इच्छुक लगता है कि उसे नेक व भला होना चाहिए, और उसका चरित्र उच्च-कोटि वाला होना चाहिए, मगर साथ ही वह चाहता यह है कि दूसरे लोग मेमार बन कर उसके व्यक्तित्व की इमारत को उठाएं। दूसरे ही उसके लिए ईंटें आदि लाकर दें, दूसरे ही गारा-मिट्टी तैयार करें, दूसरे ही रद्दे रखें और वह खड़ा देखता रहे, कि उसके व्यक्तित्व का शानदार महल तैयार हो रहा है। दूसरे ही उसके अख्लाकी तकाजे पूरे कराएं, दूसरे ही उसके अन्दर भले बुरे के लिए चेतना व समझ-बूझ पैदा कर दें, दूसरे ही उसकी संकल्प-शक्ति को पैरों पर खड़ा कर दें, और दूसरे ही उससे नेक आमाल करवाएं। कोई उसके दिल में कुरआन की मुहब्बत भर दे, कोई तरबियतगाह उसकी नमाज में यकसूई व तल्लीनता भर दे, कोई समूह उसके कुरबानी और त्याग के जज्बे को मूर्त-रूप दे और कोई दूसरा ही उसको ऊंचाइयों में ले उड़े।

फिर जब दूसरों से उसके ये मुतालबे पूरे नहीं होते तो वह सोचता है कि कहीं कोई खराबी ज़रूर है। किसी निज़ाम-ए-तरबियत में कोई कमी है, किसी तंजीम में कोई खराबी है, किसी कार्य-विधि में कोई गड़बड़ है। मस्जिदों के निज़ाम में फतूर है, उलेमा के गिरोह में खराबी है, एक सिरे से दीन की ही व्यवस्था व चिन्तन में कमजोरी है, या फिर इस्लाम समय से पीछे रह गया है। वह अपने से बाहर हर जगह और हर चीज में खराबी तलाश करता है और पा लेता है। मगर उसे अपने अन्दर की खराबी का पता नहीं चलता। उसे मालूम नहीं कि उसके अन्दर का इन्सान इस दुनिया और अगली दुनिया की हकीकतों से गाफ़िल पड़ा सो रहा

है। वह परेशान हो होकर अपनी कमियों और खराबियों का दोष दूसरों के सिर डालता है। वह बड़ी महारत से आलोचना करता है और उसकी आलोचना बड़ी दिलचस्प होती है कि खुद उसके अपने अन्दर जो सब से बढ़ कर कमी पाई जाती है, उसको वह बड़े जोर-शोर से दूसरों के अन्दर पा लेता है और उसकी निशान-देही करता है। वह अगर अख्लाकी तरक्की की राह में सुस्ती से आगे बढ़ने वाला होगा तो दूसरों की सुस्त रफ्तार पर पकड़ करेगा, वह यदि खुद हिंसा को पसन्द करने वाला होगा तो दूसरों पर हिंसा-पसन्दी का दोष थोपेगा। वह अगर खुद लेन-देन के मामलों में गड़बड़ करने वाला होगा तो वह दूसरों की हर भूल-चूक पर झूठ-कपट व बेईमानी का इल्जाम लगाएगा। उसका यदि खुद अपना जीवन-स्तर फुजूलखर्ची वाला होगा तो वह दूसरों के सन्तुलित जीवन को भी 'अपव्ययी' बतलाएगा और उसके लिए कुछ दलीलें भी ढूँढ लाएगा। वह यदि खुद कुछ दीनी तकाजों को पूरा करने में ढीला पड़ गया है, तो उन्हीं तकाजों के बारे में दूसरे अच्छे लोगों को नाकारा साबित कर देगा। यदि वह खुद मजबूरी या ज़रूरत के नाम पर बड़े-बड़े नियमों में अपने लिए कुछ लचक पैदा कर लेता है तो दूसरों को बे-उसूल साबित करने के लिए अपनी सारी वाकपटुता व बुद्धि खर्च कर देगा। वह जब खुद हाथ-पांव तोड़ कर बैठ जाएगा तो सारी दुनिया की निष्क्रियता का मातम करेगा। वह जब खुद निच्छल व बेगरज कुरबानी की भावना गवां चुकेगा तो दूसरों के अन्दर निःस्वार्थता की आत्मा की बरबादी का मातम करेगा। और वह खुद जिस मुकाम पर पहुंच कर एक उच्च-आदर्श के लिए मामूली कुरबानी देकर दूसरों के साथ खुले दिल से सहयोग करने की क्षमता खो बैठेगा तो दूसरों की तंगदिली और बेलिहाजी का दुखड़ा रोने लगेगा।

इन्सान का आखिरी दांव यह होता है कि अपनी नालायकियों की जिम्मेदारियों से बचने के लिए 'जबरिया' (विवशता) के फलसफे की आड़ लेता है। हर ज़माने में ऐसे बहुत से लोग पाए जाते रहे हैं, जिन्होंने अपनी नाकामी, निष्क्रयता और नालायकी व गिरावट का मातम करने के बजाए, तकदीर का मातम किया है। खासतौर पर ऐसे मौकों पर जब भी किसी हक-पसन्द बन्दे ने इस्लाह की दावत दी तो निष्क्रयता व जड़ता में पड़े तत्वों ने अपने बिगाड़ की सारी जिम्मेदारी खुदा की मरज़ी और तकदीर पर डालने की कोशिश की और अपने निकम्मेपन और करतूतों में मगन रहने के लिए यह ख्याल पेश किया कि यदि खुदा को पसन्द हो कि हम ईमान लाएं और अच्छे काम करें तो वह अपनी ताकत और सत्ता के बल पर हमें सीधी राह पर डाल सकता है। लेकिन जब उसने ऐसा नहीं किया तो हम मजबूर व असहाय बन्दे क्या कर सकते हैं? हाफिज़ शीराज़ी ने इस मनोवृत्ति को एक शेर में इस तरह पेश किया है:

"दर कूए नेक नामी मा रागुज़र ना दानन्द  
गर तू नमी पसन्दी, तग़यीर कुन कज़ारा।"

अर्थात्— 'नेकनामी के कूचे में उन्होंने हमें गुज़रने का मौका नहीं दिया। यदि तू इसको पसन्द नहीं करता है तो फिर हमारी तकदीर को बदल दे।'

इन्सान अपना केस बड़ी खूबी और महारत के साथ तैयार करता है। वह हज़ार ख़ताओं का जिम्मेदार होने के बावजूद एक मज़्लूम मुद्दई बन कर इन्सानियत की अदालत में आता है। और न जाने किस-किस को दोषी ठहरा कर मुजरिमों के कटहरे में खड़ा कर देता है। वह खुद को हर हाल में मजबूर व बेबस ठहरता है और दूसरे हर हाल में उसकी ग़लतियों, दुष्कर्मों और नामाकूल हरकतों

के जिम्मेदार होते हैं। उसके पास अपने लिए बड़े एलाउंस हैं, बड़ी छूट है, माफी की बड़ी गुंजायश है। मगर इसी के साथ दूसरों के लिए उसकी भावनाओं का हमला भी बड़ा संगीन होता है, उसकी जुबान में बड़ी कड़वाहट होती है और उसकी दलीलें भी बड़ी जोरदार होती हैं और दूसरों की हद तक उसकी कसौटी और मापदंड भी बड़े कड़े होते हैं। ऐसा इन्सान छल-कपट की ही दुनिया का नहीं, बल्कि खुद अपने आपको भी धोखे में रखने की कला का उस्ताद होता है। लेकिन यह सारा धोखा व छल और खुदफरेबी बस इसी दुनिया तक है। आखिर में उसे उस मंज़िल पर पहुंचना है जहां कोई फरेब नहीं चलेगा और सारे फरेबों का परदा हट जायेगा और उसे खुद अपने नफ़्स का जिम्मेदार आप होते हुए जवाब देना होगा।

ये सारी परिस्थितियाँ और ये विभिन्न मनोवैज्ञानिक तजरबे जिन से आदमी गुज़र रहा होता है, केवल इस बात की अलामतें हैं कि आदमी के अन्दर उसका जो सुधारक उसे प्रदान किया गया है, वह सो रहा है और उसकी अपनी जिम्मेदारी महसूस करने की भावना सो गई है।

इस मन में स्थित मुसलह शक्ति को जगाने के लिए नबियों की दावत गुंजती है : 'लहा मा क-स-बत वा अलैहा मक-त-सबत'— अर्थात् 'हर व्यक्ति ने नेकी कमाई है, उसका फल उसी के लिए है, और जो बदी समेटी है, उसका वबाल भी उसी पर है' (२ : २८६) दूसरों की भलाई उसकी बुराई का बदला नहीं हो सकती, और दूसरों की बुराइयां उसकी भलाई को मिटा नहीं सकतीं। यहां का कानून यह है, 'लना आमालुना व-लकुम आमालुकुम।' अर्थात् 'हमारे आमाल (कर्म) हमारे लिए हैं और तुम्हारे आमाल तुम्हारे लिए हैं।' हर आदमी का अपना-अपना खाता अलग-अलग खुल रहा है। आखिरत के बैंक में जो कुछ किसी का जमा है, उसे कोई दूसरा

जाली चैक पर निकलवा नहीं सकता, और जिसका खाता खाली है, वह किसी दूसरे के खाते से कोई हिस्सा उसमें डलवा नहीं सकता। आदमी की सीरत की तिजोरी में बस वही माल जमा होता है जो खुद उसने अपनी नीयत व इरादे और अपनी मेहनत से कमाया हो। किसी दूसरे की कमाई उसके कर्म-सम्पत्ति में बढ़ोत्तरी नहीं करती, और न दूसरों के बही-खातों पर आलोचना करके उनमें से कोई हिस्सा हासिल किया जा सकता है। यही वह सच्चाई है जिसे कुरआन ने यूँ भी बयान किया है, 'लैसा लिल इंसानि इल्ला मा सआ' अर्थात्, 'जो कुछ बोओगे वही काटोगे।

ज़िम्मेदारी की भावना जिस दिन चौंक उठती है, तो आदमी उसी दिन ज़िन्दगी की खेती को हरा-भरा बनाने के मकसद से कर्म पर जुट जाता है। वह एक किसान की तरह फावड़ा कंधे पर डाल कर निकल खड़ा होता है और अपने व्यक्तित्व के चटियल मैदान में गुड़ाई शुरू कर देता है। और ग़लत आदतों की सालों से जमी हुई चट्टानों को चकनाचूर करता है। वह ग़लत धारणाओं व झूठी आस्थाओं की झाड़ियों को उखाड़ डालता है। और दिव्य-शिक्षा से उसकी सिंचाई करके भले व नेक इरादों का बीज बोता है, यहां तक कि उच्च आचरण की एक शानदार फसल लहलहा उठती है और धीरे-धीरे उस पर नेकी, भलाई बुजुर्गी बढ़ाई और सखावत के फूल-फल व पत्ते आने लगते हैं। फिर जब यह फसल तैयार होकर आखिरत के खलियान में पहुंचती है, और उसकी गहाई हो जाती है तो वह वहां के अमर जीवन के लिए खत्ते भर लेता है।

नबियों की इस्लाही कोशिशों का असल निशाना ज़िम्मेदारी की इस भावना को चौंकाना और झंझोड़ना तथा उसे क्रियाशील बनाना है। यह जाग जाये तो फिर किस्मत जाग उठती है, यह सोती रहती है तो सिरे से इन्सान का मुकद्दर ही सोया रहता है। इस चेतना



को जगाने के लिए जगत में बेशुमार निशानियां व दलीलें काम कर रही हैं। उसको जगाने के लिए फितरी और मनोवैज्ञानिक घटनाएं बड़ी सहायक होती हैं। अनादि जगत के यात्री को फर्ज के रास्ते पर आगे बढ़ाते रहने के लिए इत्हाम का बिगुल बजता है—।

**'मुझे यह डर है, विले जिन्दा तू न मर जाए,  
कि जिन्दगानी इबारत है तेरे जीने से।'**

सार यह कि जिस व्यक्ति के अन्दर यह चेतना और एहसास काम करने लगे कि मैं अपने भले और बुरे का खुद जिम्मेदार हूँ, और खुद मुझे अपने दिल को जिन्दा रखना है, खुद मुझे अपने दिमाग को अच्छे विचारों का बागीचा बनाना है, खुद अपनी आत्मा को ऊंचा उठाना है, खुद मुझे अपने चरित्र व आचरण को संवारना और अपनी जिन्दगी को शैतानी हमलों से बचाना है, उसी के बाद खुदा की तौफीक और मदद हासिल होती है।

जो लोग खुदा की तरफ बढ़ने का इरादा व हौसला बांध कर चल खड़े होते हैं, जिनकी खुदा की ओर से रहनुमाई भी होती है। जिम्मेदारी की यह एहसास जब जिन्दा हो जायेगी तो फिर किरदार में भी निखार और बुलन्दी आती चली जायेगी, और जब उस पर ऊंच छा गई तो फिर रफ्तार में ठहराव पैदा हो जायेगा, तरक्की रुक जायेगी और गिरावट शुरू हो जायेगी। चरित्र का महल देखते ही देखते खंडहर बन जायेगा अतः हमें हर समय यह देखते रहना चाहिए कि सीने में जिन्दा दिल है या नहीं? और जिन्दा दिल कब तक जाग रहा है और चौकस है। और कब वह ऊंचने लगा है। दिल जब जागृत व चौकन्ना होता है तो आदमी यूँ सोचता है, 'मेरी जिम्मेदारी क्या है? मैंने क्या चूक या कमी की है?' लेकिन जब दिल मर जाता है या सो जाता है तो आदमी का सारा ध्यान इस बात पर केन्द्रित रहता है कि दूसरों की जिम्मेदारियां क्या हैं, और उनसे क्या कोताहियां हो रही हैं?

## अपने मरतबे व मुक़ाम का सही शऊर

मैंने अपने अध्ययन और सोच-विचार से एक नतीज़ा यह निकाला है कि मानव-चरित्र का आधार अपने मरतबे व मुक़ाम की सही चेतना पर है। यदि आदमी अपने लिए ग़लत मरतबा व मुक़ाम तज्वीज़ कर ले तो उसकी ज़िन्दगी ख़्याल की एक नन्हीं सी कोंपल से लेकर कर्म क्षेत्र के अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य-कलापों तक और निजी सरगर्मियों से लेकर अंतरराष्ट्रीय मामलों तक सारी बिगाड़ जाती है। उसकी इस्लाह उसी हालत में मुम्किन होती है जबकि वह अपने आपको सही मरतबे व मुक़ाम पर रखता है। इस सारी सृष्टि में जब तक अपने निश्चित पद व स्थान को तलाश नहीं कर लेता, वह भटका हुआ तथा पेशन रहता है। और जब वह अपने सही स्थान को पा लेता है तो वह संतुलन और ठहराव भी हासिल कर लेता है।

इस्लाम का सबसे बड़ा कारनामा यह है कि उसने इन्सान को सोचे-समझे तरीके से, उसके सही मुक़ाम व मरतबे से वाक़िफ़ किया है। इस्लाम के दिए गए हकीकत के इल्म के अनुसार एक आदमी, खुदा, मानव-जाति और इस सृष्टि के तिकोन में अपना सही स्थान इस चेतना के साथ पाता है कि:

—खुदा के सामने उसका मुक़ाम अब्दियत (आज्ञाकारी, उपासक) का मुक़ाम है।

—मानव जाति के साथ उसका रिश्ता भाईचारे और समानता का रिश्ता है।

—और अल्लाह का ख़लीफ़ा (नायब, प्रतिनिधि) होने के नाते वह इस भौतिक संसार पर हाकिम और उसकी नेमतों के इस्तेमाल का अधिकारी है।

खुदा के सामने अपनी अब्दियत (बंदगी व गुलामी और आज्ञाकारिता) को पहचान लेने के बाद इल्म व कृष्ण पर गर्व व घमंड और जुल्म व ज्यादती की भावनाओं के वे दरवाजे बन्द हो जाते हैं जो मानवता को तबाही व हलाकत की तरफ ले जाते हैं। अल्लाह की अब्दियत में सब का बराबर से शामिल होना तमाम इंसानों में भाई-चारे के जिस संबंध को बढ़ावा देता है वह नसली तबकाती (वर्ग संबंधी) और भूगोलिक ऊंच-नीच तथा उनके आधार पर चलने वाली खींचतान की तोड़ करता है। भौतिक संसार, उसके तत्वों, स्रोतों व शक्तियों तथा कृदरत की दी हुई चीजों और जीवन की जरूरतों के मुकाबले में जब इन्सान अल्लाह के खलीफा का स्थान ग्रहण करता है तो सामाजिक जीवन को त्याग कर सन्यास ले लेने की भावना का तोड़ हो जाता है और आदमी का आत्म-सम्मान भी तुच्छता की भावना से सुरक्षित हो जाती है। जिस की बनियाद पर जिम्मेदारी का सारा एहसास खड़ा होता है।

इस मरतबा व मुकाम से आगे बढ़ कर जब कभी इन्सान घमंड के रास्ते से खुदाई के क्षेत्र में कदम रख देता है तो भी उसका किरदार खत्म हो जाता है, और उससे यदि वह नीचे गिर कर अपने जैसे इन्सानों, भौतिक प्रतीकों व पदार्थों तथा धन या बाहुबल को अपना माबूद (उपास्य) बना लेता है तो भी उसकी सीरत गिरावट के हवाले हो जाती है।

इन्सान को उसके इस उचित स्थान का बोध तो बाहर से कराया जा सकता है, मगर उसे इस सही मरतबा व मुकाम पर खड़ा करना और फिर सारी उम्र उस पर कायम रखना किसी बाह्य साधन से संभव नहीं हो सकता। इस स्थान पर खड़े होकर अपनी सीरत की तराजू को मजबूती से इस प्रकार थामे रखना कि हर-हर आन इस बात का ध्यान रहे कि न तो इसका पलड़ा अहम् अहंकार की तरफ

झुके और न तुच्छता व हीन भावना की तरफ, एक बड़ी परीक्षा है।  
दीन की सारी शिक्षाएं, अखलाक के सारे ज़ाबते और  
कानून-शरीअत के सारे 'करो, न करो' के आदेश इसी तराजू की  
डंडी को सीधा रखने और उसकी सूई को सधा हुआ रखने के लिए  
हैं। मगर उसे थामने वाला हाथ तथा उसकी निगरानी करने वाली  
आंख कहीं बाहर नहीं है, बल्कि हर आदमी का अपना ही हाथ और  
अपनी ही आंख उसकी ज़ामिन है। इसीलिए अपनी ज़िन्दगी की  
इस्लाह की ज़िम्मेदारी हमारे अपने ही ऊपर लागू होती है।

## उद्देश्य

यह तो स्पष्ट है कि हम अपनी जिन्दगी को बाकी रखने के लिए कुछ ज़रूरतों व इच्छाओं से बंधे हुए हैं। उन ज़रूरतों को हमें किसी न किसी तरह पूरा करना पड़ता है। लेकिन यदि इन्सान केवल अपनी इच्छाओं और ज़रूरतों को पूरा करने में लग जाए तो उसके अन्दर अख़्लाकी जिन्दगी सिरे से करवट ही नहीं लेती और उस में कोई रूहानी तरक्की नहीं होती। नैतिक जीवन ऐसी जिम्मेदारियों से बनता है जिनको पूरा करने के लिए अपनी इच्छाओं की कुछ न कुछ कुरबानी देनी पड़े। दूसरे शब्दों में अख़्लाकी जिन्दगी अपनी इच्छाओं के त्याग से शुरू होती है। अपनी इच्छाओं में ही मग्न रहना हमें हैवानी जिन्दगी (पाशव जीवन) तो दे सकता है, लेकिन उच्च कोटि की इन्सानी जिन्दगी अपनी इच्छाओं को किसी ऊंचे उद्देश्य पर कुरबान करने से ही हासिल होती है। सार यह कि सीरत को बनाने और जिन्दगी को संवारने और आत्मिक व अख़्लाकी उन्नति व विकास पाने के लिए इन्सान के सामने कोई कुरबानी चाहने वाला उद्देश्य और स्वार्थ से ऊंचा लक्ष्य निगाह में होना चाहिये। इसके बिना अख़्लाक का विकास, चरित्र का निर्माण और नफ़स की इस्लाह की कोई सम्भावना नहीं। यह उद्देश्य और लक्ष्य जितना कमज़ोर और सीमित या उच्च और विस्तृत होगा उसके अनुसार मानव-चरित्र व आचरण में भी बलन्दी व पस्ती और विस्तार या संकुचितपन पाया जाएगा। वह व्यक्ति जो जानवर की तरह सिर्फ़ अपने चारे-पानी, अपने थान या जोड़े की तलब में सरगर्म रहता है उसके अन्दर सीरत व किरदार नाम की कोई चीज़ नहीं पाई जा सकती। इससे बढ़ कर वे लोग हैं जो ख़ानदान, कबीले, नस्ल, कौम, वतन, समुदाय या किसी खास संस्था या समूह के हित को सामने रख कर अपनी इच्छाओं का त्याग और अपने हित की कुरबानी देते हैं। उनके अन्दर एक विस्तृत, लेकिन सीमित किस्म का चरित्र निर्मित होता है। इसके विपरीत

इस्लाम ने हमारे सामने सारी मानवता का सामूहिक और अति-विस्तृत हित बतौर उद्देश्य सामने रखा है और हमारी निगाहें 'रज़ाए इलाही' पर केन्द्रित की हैं। इस्लाम के इस उद्देश्य को सही तौर पर अपना लेने से अत्यन्त महान दरजे का किरदार बनता है। इस उद्देश्य से बढ़कर कोई दूसरा उद्देश्य नफ़स की कुरबानी नहीं मांगता। मगर यह कीमत में सबसे बढ़कर मूल्यवान है।

हर उद्देश्य आदमी के सामने कुछ उसूलों और तकाजों को फर्क बना कर रखता है। हर फ़र्ज इच्छाओं के मुकाबले पर आकर कुरबानी मांगता है। फ़रायज़ और ख्वाहिशात के बीच कशमकश होती है। और यह कशमकश ज़िन्दगी को एक इम्तिहान बना देती है—

**"अर्सा-ए-आलम में तेरा इम्तिहान है ज़िन्दगी"**

इस कशमकश और इम्तिहान की हालत में पड़ कर आदमी को हंर आन फैसले करने पड़ते हैं, और उन फैसलों को निभाना पड़ता है। इम्तिहान में पड़ना और सही फैसले करना और फिर उनको निभाना किरदार को विकसित करता है और उसके जौहर को वैसे ही क्रान्ति व उच्चता प्रदान करता है जैसे सोना बार बार तप कर कुन्दन बनता है।

कोई नहीं जो इम्तिहान की स्थिति में होने की चेतना को बाहर से आदमी पर ठूस सके, कोई नहीं जो इस कशमकश की ज़िम्मेदारी को बाहर से तसलीम करा सके, कोई नहीं जो फ़र्ज और ख्वाहिश के किसी संग्राम में आदमी के अन्तःकरण में होने वाले फैसले को समझ सके और उसको बल पूर्वक सही मार्ग पर डाल सके और कोई नहीं जो किसी अख़्लाकी फैसले को वफ़ादारी से निभाने पर बाहर के दबाव से आदमी को मजबूर कर सके।

‘खैर व शर’ (भलाई और बदी) के बीच सारी उमर जारी रहने वाली इस कशमकश में केवल वही व्यक्ति बाज़ी ले जा सकता है जो एक सिपाही का जज़्बा अपने अन्दर रखता हो। एक संतरी की तरह अपने उसूलों और अपने फ़रायज़ की निगरानी करने वाला बने, और एक पहलवान की तरह सिफली (नीच) भावनाओं से कुशती लड़ता रहे। जिस व्यक्ति के अन्दर का सिपाही हथियार फेंक चुका हो, जिस आदमी के अन्दर का संतरी सो गया हो, और जिस व्यक्ति के अन्दर का पहलवान बेहिस हो गया हो, वह जिन्दगी का खेल हार चुका, कोई दूसरा उसके हिस्से की जंग नहीं लड़ सकता, और कोई दूसरा उसकी जगह पहरा नहीं दे सकता।

किसी उद्देश्य को निश्चित रूप से चुन लेना, उस पर हमेशा अपनी निगाह केन्द्रित रखना, उसके तकाजों और फ़रायज़ को अपने लिए लाज़िम कर लेना, उसके मुतालबों के अनुसार अपनी इच्छाओं की कुरबानी देना, उससे पैदा होने वाली कशमकश में एक मुजाहिद की शान के साथ पेशकदमी करना और हर कदम पर मज़बूती के साथ जमे रहना खुद हमारा काम है, दूसरों का नहीं।

जब व्यक्ति इस्लाम को अपनी जिन्दगी का मार्गदर्शक बनाता है तो इसका मतलब यह है कि वह अपने लिए सर्वोच्च उद्देश्य चुन लेता है, और वह उद्देश्य है— ‘रज़ाए-इलाही—’ अल्लाह की रज़ा की प्राप्ति। और इस मक़सद के लिए पूरी मानवता का कल्याण चाहना, और उसके लिए हक़ के निज़ाम को पूरा का पूरा कायम करना और उसे विकसित करना। इस प्रकार वह अपने लिए बहुत सारे फ़रायज़ निश्चित कर लेते हैं। वह अपने ऊपर कुछ सीमाएं बाँध लेता है, वह अपनी इच्छाओं की कुरबानी के अवसरों से आगाह हो जाता है। वह अपने आपको परीक्षा व कशमकश के मैदान में ला खड़ा करता है। अब वह क्यों यह चाहता है कि

रोज़-रोज़ उसे कोई बताए कि तू मुस्लिम है। बार-बार उसे नय सिर से समझाए कि तेरा लक्ष्य अब 'रज़ाए-इलाही' है। हर दिन उसके फ़रायज़ की लिस्ट उसके सामने पढ़ता रहे, कि इनको तुझे पूरा करना है, और इनके लिए कुरबानियां देनी हैं। हक़ व सब्र की याददहानी और उसकी दावत बेशक़ इस्लामी समाज या इस्लामी संगठन की अनिवार्य शान है और एक लक्ष्य के फ़िदाइयों की अपनी दोस्ती व रिफ़ाक़त और हितचिन्तन का तकाज़ा भी है कि वे बार-बार आपस में हक़ का उपदेश देते रहें, अपने माहौल को अपनी जिम्मेदारियों की याद से गरमागरम रखें, लेकिन यदि हर व्यक्ति सद-मार्ग पर अपने जमे रहने, हक़ पर कायम रहने तथा अपनी इस्लाह की जिम्मेदारी दूसरे के ही सर डाले और खुद अपनी जिम्मेदारी को पूरा न करे तो सिर से हक़ और सब्र की तरफ़ बुलाने अर्थात् 'तवासी बिलहक़ और तवासी बिंस-सब्र' का माहौल ही नहीं बनेगा।



## ज़ाब्ता व मेयार का इल्म

नेक बनने के लिए नेकी की धुंधली सी तस्वीर दिमाग में होना काफी नहीं, बल्कि सीरत व किरदार को संवारने के लिए एक स्पष्ट ज़ाब्ता और कसौटी का ज्ञान होना जरूरी है। हर ज़माने में, हर जगह और हर प्रकार के हालात में व्यक्ति और क़ौम के अन्दर बेहतर ज़िन्दगी हासिल करने, बुराइयों और ख़राबियों से बचने और तामीर व तरक्की के रास्ते पर बढ़ने की इच्छा प्राकृतिक रूप से मौजूद रहती है। लेकिन बेहतर ज़िन्दगी हासिल करने का रास्ता सामान्य रूप से अस्पष्ट हो रहा है। जब कभी यह रास्ता अस्पष्ट रहा है, इन्सानी काफ़ले धुंधली कल्पनाओं के पीछे-पीछे आबारागर्दी करते रहे हैं। मानवता भलाई व कल्याण और सफलता ऐसे ही किसी दौर में पा सकी है जबकि इस कामयाबी व कल्याण के लिए स्पष्ट ज़ाब्ता उसके हाथ में आया हो।

नबियों, (अलैहिमुस्सलाम) का सबसे बड़ा एहसास यही है कि उन्होंने नेकी और कामयाबी व कल्याण के ज़ाब्ते को स्पष्ट रूप से मानवता के सामने रखा। अपनी आखिरी और मुकम्मल शक़ल में यह ज़ाब्ता क़ुरआन ने पेश किया है।

ज़ाब्ते के साथ ही इन्सान हमेशा इस बात का भी मोहताज रहा है कि उस ज़ाब्ते के अनुसार ढली हुई इन्सान की ज़िन्दगी का एक चलता फिरता नमूना भी उसके सामने रहे। वह हिदायत और प्रेरणा हासिल करने के लिए अव्यावहारिक, मात्र काल्पनिक दर्शन से कहीं ज़्यादा किसी व्यावहारिक नमूने से शिक्षा लेता है और उसे अपनाता है। वह केवल दार्शनिक दावत और मात्र दलीलों से क्रान्तिकारी आत्मा हासिल नहीं कर सकता। बल्कि उसे ऐसे हिकमत की ज़रूरत है जिसके साथ उसकी व्यावहारिक व्याख्या भी मौजूद हो। वह ऐसा दर्शन चाहता है जो घटनाओं के रूप से अपना जलवा दिखाए, वह ऐसी दलीलों का ज़रूरतमन्द होता है जिनके

अन्दर मानव भावनाओं की घुलावट मौजूद हो। दूसरे शब्दों में वह केवल एक किताबी ज़ाब्ते से पूरी हिदायत नहीं पा सकता। बल्कि उसे किसी ऐसे इन्सान की ज़रूरत है जो किताबी ज़ाब्ते को मानव जीवन में चलता-फिरता दिखा सके। उसे एक आदर्श चरित्र की ज़रूरत होती है और यह आदर्श रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का कान्तिमय व्यक्तित्व है।

अनुभव से स्पष्ट है कि हम में से हर व्यक्ति अपने दोस्तों, मिलने जुलने वालों, समाज के प्रतिष्ठित व प्रसिद्ध लोगों और ऐतिहासिक शख्सीयतों में कहीं न कहीं अपने लिए आदर्श ज़रूर रखता है। और फिर अपने अख़्लाकी ज़ाब्ते बनाने, रोज़-रोज़ के मामलों में फैसला व उन पर अमल करने में, बातचीत, चालढाल यहां तक कि वेश-भूषा तथा छवि बनाने में अनायास ही अपने उस आदर्श या आयडियल की पैरवी करता है। कुछ खास शब्द और उनके लिए खास उच्चारण और इसी प्रकार खुशी और ग़म, गुस्से और प्रेम, दया और घृणा के कुछ तौर-तरीके हम खास-खास व्यक्तियों से अपने अन्दर उतार लेते हैं। अब जैसा-जैसा आदर्श नमूना किसी ने अपने सामने रखा होता है, उसी तरह का चरित्र उसके अन्दर परवान चढ़ता है। किसी के सामने एक फिल्मी एक्टर का किरदार होता है, किसी के सामने कोई कवि या लेखक होता है, किसी के सामने किसी उपन्यास का हीरो होता है, किसी के सामने क्रिकेट या हाकी का कोई खिलाड़ी होता है, किसी के सामने उसका कोई उस्ताद, अफसर या पार्टी का या देश का लीडर होता है। कई बार हमारे विभिन्न आदर्श-नमूने विभिन्न दिशाओं में बिखरे होते हैं और हम अलग-अलग पहलुओं से एक साथ बहुत से लोगों की पैरवी करते हैं। इस्लाम ने यह चाहा है कि हम अपनी पूरी अख़्लाकी जिन्दगी के लिए 'सरवरे आलम' (स०) की एक ही बे-दाग़ और बे-मैल जिन्दगी को अपने अमल के लिए नमूना और मापदंड बनाएं

और सारा मार्ग-दर्शन वहीं से हासिल करें। मानव-चरित्र के लिए वही सबसे ऊंचा मुकाम है जिस पर निगाह जमा कर सबसे ऊंची उड़ान भरी जा सकती है। इस सबसे ऊंचे आदर्श वाले चरित्र व आचरण की सुन्नत, (कथनी व करनी) का ठीक प्रमाणित रिकार्ड, उसकी पूरी तस्वीर सुरक्षित है और हमारे इतिहास का भवन उसकी अमिट रोशनी से जगमगा रहा है और उस आदर्श को अपने जीवन में निखारने वाला व्यक्ति खुद जगमगा उठता है।

इस्लाम के पेश किए हुए ज़ाव्तों और मानदंडों को कुरआन व हदीस से मालूम कर सकते हैं। कुरआन व हदीस का इल्म ही वह वास्तविक व ऐच्छिक ज्ञान है जिसकी तलब हर मुस्लिम औरत और मर्द के लिए फर्ज ठहराई गई है। इस इल्म को हासिल करने का सबसे बेहतर तरीका यह है कि आदमी अरबी भाषा सीखे और सीधे कुरआन व हदीस का अध्ययन करे अगर यह मुमकिन न हो सके तो अनुवाद और टीकाएं मौजूद हैं उन से मदद ले। कुरआन के दर्स के हल्कों और तकरीरों से फ़ायदा उठाए। लेकिन इस इल्म की तलब किसमें कितनी है, कितनी नहीं इस बात का दारोमदार खुद उस आदमी पर है। और यह मामला भी आखिरकार लौट कर उसी की तरफ़ आता है कि वह कहां तक अपने आपको उस इल्म के अनुसार ढालता है; जो वह इन महान स्रोतों, कुरआन व हदीस, से हासिल करता है। इस ज्ञान की प्यास अगर मौजूद न हो, तो चाहे उसके फुव्वारे हर तरफ़ फूट रहे हों, एक आदमी बिल्कुल जाहिल पड़ा रहेगा। अगर उसके अन्दर इस इल्म के प्रति जड़ता पैदा हो गई है तो फिर बाहर से उसके अन्दर चाहे कितना ही इल्म क्यों न ठूस दिया जाए वह उसके हक में बिल्कुल बे-नतीजा रहेगा।

यह एक-एक व्यक्ति का अपना काम है कि वह आदर्श और मापदंड के इल्म की प्यास अपने अन्दर जगाए और जो इल्म हासिल हो उसके अनुसार अपने अमल व किरदार (आचरण व चरित्र) की इस्लाह की मुहिम जारी रखे। 29

## एक संकल्प, एक फैसला

यदि हम इन्सान के मनोवैज्ञानिक पहलुओं का गहराई से अध्ययन करें तो चाहे जीवन का कोई सम्पूर्ण इन्कलाब हो या कोई आंशिक सुधार, हर तब्दीली एक संकल्प और एक फैसले का नतीजा होती है। जब तक दृढ़ निश्चय न किया जाए और जब तक आत्म-संकल्प एक निश्चित फैसले का एलान न कर दे, हमारे अन्दर कोई तब्दीली नहीं आ सकती, कोई विकास नहीं हो सकता। बहुत सी चीजें हैं जिनकी हम तारीफ करते हैं और बातीचत के दौरान उनको उचित मानते रहे हैं, लेकिन उन को व्यावहारिक रूप में अपनाते नहीं। दूसरी तरफ बहुत सी चीजों को हम बुरा कहते हैं और उनसे बचने में ही कामियाबी और नजात समझेते हैं, लेकिन सारी उम्र वे हमें घेरे रहती हैं। यह असंगति केवल इसलिए हम को वर्षों दबोचे रहती है कि हम एक निश्चित फैसला और उसके अनुसार दृढ़ संकल्प नहीं कर पाते, बल्कि बीच में लटके रहते हैं। अपने नफस के इस्लाह की मुहिम शुरू करने के लिए सबसे पहली जरूरत यह है कि आदमी अपने ज्ञान और विवेक के अनुसार हर मामले में एक निश्चित फैसला करने और दृढ़ संकल्प बांधने की क्षमता अपने अन्दर पैदा करे।

इस्लाम ऐसा इन्सान तैयार करना चाहता है जो खुदा और रसूल (सल्ल०) का आज्ञाकारी बन कर दूसरों की भलाई चाहे और दुनिया में खैर व भलाई के खजाने को बढ़ाने और जिन्दगी को भले चरित्र व आचरण से सजाने-संवारने की मुहिम में लग जाए। अब इस तरह का इन्सान वही व्यक्ति बन सकता है जो एक बार यह निश्चित फैसला कर ले कि आज से किसी के साथ बुराई करने के लिए न दिमाग से सोचूँगा और न अपने अंगों से कोई ऐसा काम होने दूँगा जो नामुनासिब हो। आज से मैं मानवता की भलाई के खजाने में

इजाफा करूंगा और उसमें घाटे व नुकसान को सहन नहीं करूंगा। आज से मैं अपने जीवन, अपने समाज और सारी मानवता को सौन्दर्य प्रदान करूंगा और उसमें भद्दापन पैदा करने में कोई हिस्सा नहीं लूंगा। प्यारे नबी (सल्ल०) की दावत पर जिन हस्तियों ने लब्बैक कहा था उन्होंने ऐसे ही निश्चित फैसले किये थे और ऐसे ही दृढ़ संकल्प किये थे। दुनिया लालच और भय के सारे साधन लेकर उनके विरुद्ध टूट पड़ी, मगर वे इस दुनिया से ऐसी सख्ती से टकराए की उसके सारे बातिल निज़ामों (मिथ्या-तन्त्रों व धारणाओं) के परखचे उड़ गए। क्या मिसाल हो सकती है उस आदमी की जिसने खजूरे खाते खाते ऐसा ही पक्का निश्चय किया और देखते ही देखते जिहाद के मैदान में कूद पड़ा और कुरबान हो गया।

एक हम हैं कि दिन रात दूसरों के जिन तौर-तरीकों से नागवारी और कष्ट महसूस करते हैं, और उनकी बुराई का एहसास भी होता रहता है, लेकिन खुद उन से बाज़ नहीं आ सकते। बसों पर और रेलों में जो हड़बोंग होती है, सड़कों और गलियों में जो गंदगी फेंकी जाती है, बातचीत में जुबानों की गंदगी और ज़ुब्बात की जो कड़वाहट सामने आती है, नज़रबाजी और फिकरे बाज़ी में जिस कमीनेपन का प्रदर्शन होता है उससे किसे तकलीफ़ महसूस नहीं होती। लेकिन हम खुद हड़बोंग मचाते हैं, हम खुद गंदगी फेंकते हैं और अपनी निगाहों व जुबानों पर हम खुद काबू नहीं रख सकते।

फिर हमारे यहां पर अजीब हालत पाई जाती है कि ऊंची तालीमी डिग्रियां हासिल करने के बाद हमारे रोशन-ख़्याल तक इन सारी घरेलू समाजी, सामूहिक व रूस्मी मामलों में पस्तियों में गिरे रहते हैं जो जिहालत की निशानी है। अच्छी से अच्छी किताबें नज़र से गुज़रती हैं, और सैकड़ों तकरीरें व वार्ताएं कानों में पड़ती हैं, मगर अख़्लाकी हालत में कोई बड़ी तब्दीली पैदा नहीं होती। यह अत्यंत जड़ता की निशानी है।

चरित्र वे लोग बना सकते हैं, जो जब किसी बुराई का एहसास करें कि वह कष्टदायक है तो उसी आन अपने दिल में यह संकल्प कर लें कि बस इसी क्षण से मैंने इसे छोड़ा इसकी शानदार मिसाल मदीना की उन जौहरदार हस्तियों ने पेश की थी जिन्होंने शराब के हराम होने का आदेश सुनते ही होंटों से लगे हुये प्याले अलग कर लिये और अपनी महबूबतरीन चीज़ शराब के घड़े के घड़े नालियों में ला पटके। या फिर उन औरतों ने मुबारक नमूना कायम किया था जिन्होंने 'हिजाब' का हुकम सुनते ही कमर से बंधे पटके फाड़-फाड़ कर तुरन्त ओढ़नियां बना लीं और घूंघट निकाल लिया। जो व्यक्ति बुराई को बुराई समझ लेने के बाद भी उसको साथ लिये चलता है और जो व्यक्ति एक अख्लाकी तकाजे की चेतना हासिल हो जाने के बावजूद उसे अपने ऊपर लागू नहीं करता बल्कि, "यह होना चाहिए" — और "वह होना चाहिए", "यह अच्छा है" और "वह बुरा है" के रटे रटाए वाक्य शायराना अन्दाज़ से दोहराता रहता है उसे कोई दर्स व नसीहत, तरबियत का कोई निज़ाम और कोई खानकाह और कोई सामूहिक माहौल संवार नहीं सकता। वह मानसिक जड़ता और दिल के फालिज का मरीज है। वह सदैव इस इतिज़ार में पड़ा रहता है कि कोई "पहुंचा हुआ" पीर या शेख उसे फूंक मार कर या उस पर एक निगाह डाल कर कुछ बना दे और कोई ज़बरदस्ती उसका हाथ पकड़ कर उसे आखिरी बुलन्दी (सर्वोच्चता) के पद पर पहुंचा दे।

नेकी का मुकाम हासिल करने के लिए ज़रूरी है कि हर मामले में जंचा तुला और साफ़-साफ़ इरादा बांधा जाए और दोटूक फैसला किया जाए। फिर उन फैसलों को उसूल बना लिया जाए और उसूलों को पायदार रिवायत और पक्की आदत के रूप में ढाल लिया जाए। हर इरादे को पूरा करने, हर फैसले को निभाने, हर ज़ाबते का हक अदा करने, हर आदत व रिवायत का पाबन्द रहने में कुर्बानियां देनी

पड़ती हैं। कुर्बानियां ही उनको कीमती और महबूब बनाती हैं।

इंसान का व्यक्तित्व उसकी आदतों और रिवायतों से ही बनता है। व्यक्ति की आदतों, खानदानों, संगठनों और समाज की रिवायतों में बड़ी भारी शक्ति होती है जो किसी खास किस्म के किरदार की हिफाजत करती है। एक तरीके पर बार-बार अमल करके एक आदमी उसमें इतना मजबूत हो जाता है कि यदि उसके खिलाफ किसी हरकत पर उकसाया जाए तो वह मजबूरी के अन्दाज से असमर्थता ज़ाहिर करेगा कि "ऐसा तो मैं हरगिज़ नहीं कर सकता।" इसी तरह एक खास तरह की अख़्लाकी रिवायतें रखने वाले खानदान या समाज के किसी व्यक्ति से यदि उन रिवायतों के विरुद्ध कोई काम करने का मुतालबा किया जाए तो वह ग़ैरतमंदाना ढंग से इंकार कर देगा कि "वह मेरे बस का काम नहीं।"

एक व्यक्ति के सामने हर मामले में स्पष्ट और तैशुदा उसूल और फैसले होने चाहिए कि "मैं यह और यह तो करूंगा, लेकिन वह और वह काम नहीं करूंगा।" उसके आमाल की अटल सीमाएं होनी चाहिए, उसके अन्दर नेकी की पक्की व मुस्तक़िल आदतें और रिवायतें कायम होनी चाहिए। इसी लिए इस्लाम कभी-कभार के झुटमुट लम्बे-चौड़े नेक आमाल के मुकाबले में उस थोड़े से नेक अमल को बेहतर बनाता है जिस पर आदमी पाबंद रहे। नेकी जो भी अपनाई जाए वह आदमी के किरदार का एक मुस्तक़िल हिस्सा बन जानी चाहिए।

अब यह बात बिल्कुल स्पष्ट है कि अपने दिल में पक्का इरादा निश्चय व संकल्प बांधना, फिर उस संकल्प को उसूल बना लेना और उसूलों को अपनी आदतों और रिवायतों में ढाल लेना आदमी के अपने ही ऊपर आश्रित है। बाहर का कोई मुरब्बी (निगरां) या मुज़क्की (सुधारक) यह जिम्मेदारी अंजाम नहीं दे सकता। इसके लिए अन्दर के मुरब्बी व मुज़क्की को ही जगाना होगा।

## अपने नफ़स की पहचान

अपनी इस्लाह व तामीर, अपने आप को जाने बिना मुम्किन नहीं। इसके लिए बड़ी ज़रूरत अपने नफ़स को जानना और उसकी पहचान हासिल करना है। मारफते-नफ़स का मतलब यह भी है कि इंसान के नफ़स की फ़ितरत (उसकी आत्मा की प्रकृति व स्वभाव) को जाना जाए और हदीस के अनुसार इस 'मारफत' के लिए भलाई की तरफ़ ले जाने वाले पवित्र स्वभाव (मलकूती कुव्वत) और उसके मुकाबले में काम करने वाली शैतानी प्रवृत्ति होती है उस पर नज़र रखी जाए। और इसका यह अभिप्राय भी है कि एक व्यक्ति अपने नफ़स की विशिष्टताओं और व्यक्तिगत प्रवृत्तियों को समझता हो।

नफ़स को यदि हम निराज की स्थिति में छोड़ दें कि उस में विभिन्न अच्छी और बुरी प्रवृत्तियां एक दंगल मचाए रखें और जब जो प्रवृत्ति भी जोर दिखाए जीवन उसी के अनुसार ढल जाए तो इस निराजी स्थिति के साथ किसी इस्लाह की संभावना नहीं। सीरत बनाने के लिए नफ़स का एक ऐसे व्यवस्थित शासन के रूप में ढलना ज़रूरी है जिसमें तमाम भावनाओं और प्रवृत्तियों को ठीक-ठीक उनके पद व मुकाम पर रखा गया हो, और हर एक के लिए उसकी सीमाएं निश्चित हों।

इस्लाह के इच्छुक हर आदमी के लिए यह अत्यन्त ज़रूरी है कि वह अपनी ख़ास-ख़ास कमज़ोरियों के प्रति पूरी तरह सजग व सचेत हो। बार-बार के तजुबों से हमें अंदाजा हो जाता है कि हमारे चरित्र का कमज़ोर पहलू क्या है? किसी के अन्दर अभिमान और घमड़ का रोग पाया जाता है, किसी में क्रोध की कटुता ज़्यादा होती है, किसी में जिद और स्वेच्छाचारिता व उद्वण्डता का मर्ज होता है,



किसी में सैक्स के मामले में असन्तुलन पाया जाता है तो किसी में कहीं फिज़ूलखर्ची और बखीली की ख़राबी होती है। किसी पर निराशा व मायूसी के हमले ज़्यादा होते हैं, किसी में अलेहदगी पसन्दी (विरक्ता) पाई जाती है किसी में कुछ और कमज़ोरियां होती हैं। अपने अन्दर ऐसी कमज़ोरियों को जान लेना और उनके विरुद्ध निरंतर सचेत रहते हुए संघर्ष जारी रखना सीरत को सुधारने-संवारने के लिए अत्यन्त ज़रूरी है। अन्यथा यदि हम अपनी कमज़ोरियों को ढीला छोड़ दें तो अन्ततः वे पूरे चरित्र पर कैंसर के ट्यूमर की तरह छ़ा जायेंगी।

सबसे बड़ी बात यह है कि नफ़स और ज़ेहन और रूह के मर्कज़ पर कड़ी नज़र रखने की ज़रूरत है। इस मर्कज़ का नाम शरीअत की परिभाषा में 'कल्ब' है। 'कल्ब' ही वह पहला स्रोत है जहां से ख़्याल और एहसास और जज़्बे व इरादे के झरने फूटते हैं। फ़साद जब इस मुख्य स्रोत में आता है तो फिर सारे किरदार में फैल जाता है और इस्लाह भी जब इस सरचश्मे की होती है तो सारी सीरत संवर जाती है। 'कल्ब' दुरुस्त हो तो यहीं असल मुरब्बी व मुज़क्की है, यही मुफ़ती और जज, यही सचेत व जागृत और चौकन्ना प्रहरी व सन्तरी है। यह बिगड़ जाए तो फिर बाहर की कोई सहायता हमें सुधार नहीं सकती।

रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने हमें सचेत किया है कि जब बिगाड़ आता है तो इसी कल्ब या रूह के मर्कज़ में एक काला बिन्दु पैदा होता है। आदमी की निगाह यदि इस मर्कज़ पर न लगी हो और वह इस काले बिन्दु को तुरन्त धो न डाले तो फिर यह बिन्दु फैलने लगता है, यहा तक कि उसकी कालिक पूरे 'कल्ब' पर छ़ा जाती है। शुरू में एक गन्दा विंचार, एक नीच भावना और एक ग़लत काम यह काला बिन्दु पैदा करता है। इस काले बिन्दु को यदि फ़ौरन न

मिटा डाला जाए तो फिर यह फैलते-फैलते सारे चरित्र को काला कर देता है। एक जागृत मुस्लिम दिल उस बिन्दु के पैदा होते ही उसे तौबा व नदामत के आंसुओं से धो देता है।

अब यह ज़ाहिर बात है कि अपने नफ़्स पर निगाह रखना, अपनी कमज़ोरियों को जानना और उनके खिलाफ़ ज़हो जहद करते रहना और अपनी रूह के मर्कज़ की निगरानी करना हर-हर व्यक्ति के खुद अपने ही ऊपर आधारित है। इस दायरे में बाहर से कोई दूसरा आदमी उसके हिस्से की जिम्मेदारी अदा नहीं कर सकता। हम दूसरों की मदद के कितने भी मोहताज क्यों न हों, जब तक अपनी इस्लाह आपका नियम अपना कर हम अपने हिस्से की जिम्मेदारी पूरी न करें, दूसरों की मदद से भी हमें कोई फ़ायदा हासिल न होगा।